बढ़ती हुई भीषण मंहगाई से

छुटकारा पाने के लिये

आवश्यकता है

'सशक्त उपभोक्ता समितियों'

की

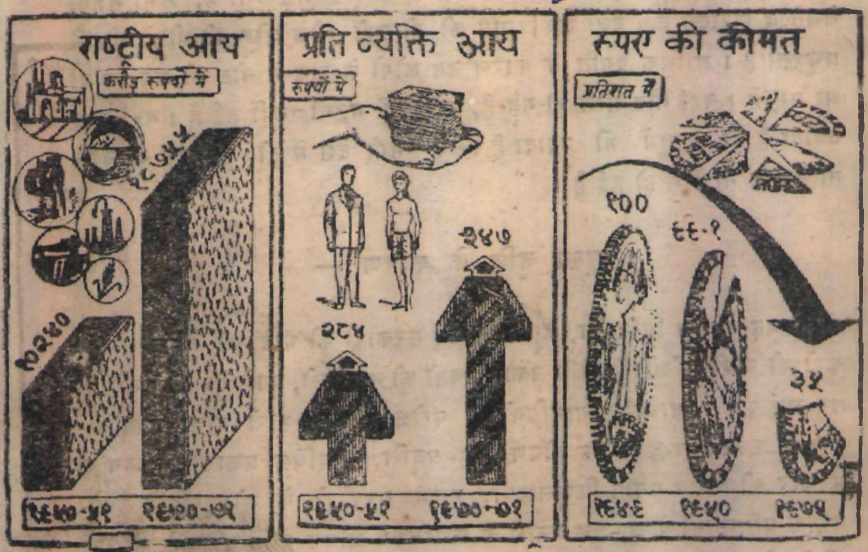

प्रकाशक : *भारतीय मजदूर संघ*

२, नवीन मार्केट, कानपुर

मूल्य : ३० पैसे

आज भीषण मंहगी की मार से सामान्य जन त्रस्त है। नित्य सबेरा होते ही फिर वही समस्या उसे घेर लेती है। कल दाम कुछ था, आज कुछ और है, उस पर भी सरलता से सुलभ नहीं। आजादी के २६ वर्ष बाद भी आज जीवन रक्षक वस्तुओं का अभाव दुनियां के सबसे बड़े लोकतन्त्र के लिये कलंक है। विकास के नाम पर मूल्य वृद्धि का बहाना कब तक चलेगा, समझ में नहीं आता। इस मंहगी ने सीमित आय वाले वर्ग को इतना अधिक झकझोर दिया है कि वह किंकर्तव्य विमूढ़ हो चुका है। क्लर्क, मजदूर, छोटे आय वाले व्यापारी खोमचे वाले, रिक्शे वाले आदि सभी के हाल बेहाल हैं। सरकार कहती है कि मंहगाई तो सारी दुनिया में बढ़ी है, और बढ़ रही है, हिन्दुस्थान भी उसका अपवाद नहीं है। जनता को बेवकूफ बनाने वाले इस अधूरे उत्तर को सुनकर किसे क्रोध नहीं आयेगा? धनी देशों में मंहगाई का दुःख दर्द नहीं होता, यह बताना सरकार भूल जाती है। उन देशों में सभी के पास पैसा है, सभी मंहगा बेचते व खरीदते हैं। वहां जरूरियात की ही नहीं मौज शौक की चीजों की भी प्रचुरता है। आर्थिक प्रगति के कारण उन लोगों के हाथ में नोट भी अब ज्यादा आ गए हैं। वहां नोट सस्ते हो गये हैं, पर चीजें मंहगी नहीं हुई है। वहां मुद्रा ज्यादा है तो वस्तुयें भी ज्यादा हैं किन्तु हमारे देश में तो उत्पादन की वृद्धि नासिक के नोटों में ही हुई है।

मूल्य वृद्धि के कारण :—

बढ़ता हुआ विनियोग, केन्द्र व राज्य सरकारों की घाटे की अर्थव्यवस्था, करों की चोरी, पूंजीपतियों से बकाये टैक्सों की न वसूली, काले धन की समानान्तर अर्थ रचना, आवश्यक सामग्रियों पर परोक्ष करों की भारी मात्रा, एकाधिकार के फलस्वरूप अत्यधिक शोषण की प्रवृत्ति, अत्यधिक प्रशासनिक व्यय व सरकार की अनाप सनाप फिजूलखर्ची, राज्य सरकारों के ओवहरड्राफ्ट सार्वजनिक प्रतिष्ठानों के अकुशल प्रबन्ध के फलस्वरूप अधिक हानि व घाटे, उद्योगों की स्थिति, आकार, लगाई गई मशीनों आदि की क्षमता के सम्बन्ध में विचारहीन व दोषपूर्ण निर्णय, विदेशी बैंकों व अन्य दूसरे विदेश नियन्त्रित उद्योगों का बेरोक टोक प्रचलन, विदेशी सहयोग के समझौतों में प्रतिबन्धकारी उपबंधों, विलासितापूर्ण सामग्रियों को निर्माण करने का प्रोत्साहन व उपभोक्ता सामानों विशेषकर

कृषि क्षेत्र के उत्थान में कमी तथा मुनाफाखोरी व जमाखोरी साथ ही शासक दल और पैसा देने वाले पूँजीपतियों व उद्योगपतियों के अपवित्र गठबन्धन के फलस्वरूप मंहगाई दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ रही है।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल में मूल्य स्तर में ३५% अर्थात ७% प्रति-वर्ष की दर से वृद्धि हुई है। सन् १९६१-६२ से १९७१-७२ वाले दशक में थोक मूल्य में ८४-४% अर्थात प्रतिवर्ष ८-८% की वृद्धि हुई। सन् १९७२-७३ के वर्ष में थोक मूल्य में ९-९ प्रतिशत वृद्धि हुई। मई १९७२ से मई १९७३ की अवधि में मूल्य स्तर में १९-८ प्रतिशत की वृद्धि हुई है। वर्तमान समय तक यह वृद्धि अत्यधिक हो चुकी है, जो मुद्रास्फीति की सबसे ऊंची वार्षिक दर है।

मुद्रा पूर्ति में वृद्धि

सन् १९५०-५१ में जनता में कुल मुद्रा की पूर्ति २०१५-९९ रुपये थी, जो बढ़कर १९५५-५६ में २२१६-९५ करोड़ रुपये, सन् १९६०-६१ में २८६८-६१ करोड़ रुपये, १९६५-६६ में ४५२९-३९ करोड़ रुपये, सन् १९७२-७३ में ९२८४-९१ करोड़ रुपये हो गई। इस वर्ष (१९७२-७३. में मुद्रा पूर्ति में १६% की वृद्धि हुई, जो उत्पादन के बढ़ने की गति से तिगुनी अधिक है। मई १९७२ में जनता के पास कुल मुद्रा की पूर्ति ८४२२-९८ करोड़ रुपये थी, जो मई, १९७३ में बढ़कर ९७३३-३४ करोड़ हो गई।

मूलत: सिक्के का तांबे, चांदी, सोने के सिक्के का आविष्कार हुआ था वस्तुओं के विनिमय की सुविधा के लिये। फिर और अधिक सुविधा के लिये, यानी सिक्कों से भरी थैली उठाने फिरने की इल्लत से छुट्टी पाने के लिये नोट शुरू हुए। परन्तु आगे चलकर सरकारों ने प्रजा की इस सुविधा का इतना दुरु-पयोग किया कि नोट सारी अर्थव्यवस्था पर छा गया।

नोटों का आधारभूत नियम यह था कि सरकार जितने के नोट छापेगी, उतने का सोना अपने खजाने में जमा रखेगी और नोट के बदले में सरकार सोना देगी। पर वह वादा अब वादा ही रह गया है। हां सरकार की साख से या राजदण्ड के भय से लोग नोटों का सम्मान करते हैं और नोट के बदले में वस्तुयें देते हैं। परन्तु उपलब्धि और मांग का बुनियादी नियम नोट और वस्तु के

आपसी विनिमय की दर पर भी लागू होता है। यदि नोट अधिक हों और वस्तु कम तो कम वस्तु के लिये अधिक नोट देने पड़ते हैं। नोट अधिक कैसे हो जाते हैं ? सीधी सी बात है सरकारें मनमानी चीजें लेकर मनमानी सेवायें करवाकर बदले में नोट पकड़ा देती हैं। और वे नोट वस्तुओं की कीमतों को धकेल धकेल कर आगे बढ़ा देते हैं।

काला धन

विशाल काले धन की राशि ने भी मूल्य स्तर को काफी हद तक प्रभावित किया है। इस समय देश में दस हजार करोड़ रुपये से भी ऊपर काले धन का प्रयोग हो रहा है। काले धन की सहायता से एक समानान्तर अर्थव्यवस्था पोषित हो रही है, जिस पर वित्त मन्त्रालय एवं रिजर्व बैंक का कोई नियन्त्रण नहीं है।

सरकारी व्यय में वृद्धि

पिछले २२ वर्षों में केन्द्रीय और राज्य सरकारों के खर्चों में बहुत तेजी से वृद्धि हुई है। सन् १ ५०–५१ में कुल राजकीय खर्चा (केन्द्र व सभी राज्यों को मिलाकर) ९१४–४३ करोड़ रुपये था, सन् १९५५–५६ में बढ़कर १४३१·०९ करोड़ रुपये और सन् १९७१–७२ में ९८४२–९३ करोड़ रुपये हो गये। सन् १९७२–७३ के बजट आंकड़ों के अनुसार कुल राजकीय खर्च ९४८७–४८ करोड़ रुपये होने की आशा है।

घाटे की अर्थव्यवस्था

प्रथम पंचवर्षीय योजना में कुल घाटे की वित्तीय व्यवस्था २६० करोड़ रुपये थी, द्वितीय योजना में कुल घाटे की वित्तीय व्यवस्था ११७७ करोड़ रुपये हुई, तृतीय योजनाकाल में ११३३ करोड़ रुपये का घाटा हुआ। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के मात्र ३ वर्षों में ११७६ करोड़ रुपये का घाटा हुआ। उस योजना के चौथे वर्ष यानी सन् १९७२–७३ में कुल ८८० करोड़ रुपये का घाटा होने का अनुमान है।

उपर्युक्त ये सभी बातें प्रमुख रूप से कारण हैं मंहगाई के बढ़ते जाने के। जहाँ तक मजदूरों को दी जाने वाली मजदूरी से मँहगाई वृद्धि का प्रश्न है, इ७

देश में निकट भविष्य में वह स्थिति आने वाली नहीं है। क्योंकि उत्पादन दर की वृद्धि वेतन दर की वृद्धि से बहुत आगे है। मजदूरी के कारण उसी समय मँहगाई में वृद्धि हो सकती है जबकि वेतन दर की वृद्धि, उत्पादन दर की वृद्धि से अधिक हो।

मँहगाई रोकने के उपाय

(१) यदि उत्पादन मांग से कुछ आगे रहता।

(२) कुछ लोगों के पास फालतू पैसा न होता।

(३) सरकार अनुत्पादन व्यय बढ़ाकर आमदनी से कहीं ज्यादा खर्च करके उसकी पूर्ति के लिये अंधाधुन्ध नोट न छापती तो इस समस्या का बहुत कुछ हल निकल सकता था।

हमारे यहाँ कृषि व औद्योगिक उत्पादन की उतनी वृद्धि नहीं हुई, जितनी होनी चाहिये थी। देश की अधिकांश पूँजी विशालकाय कल कारखानों में लगा दी गई है। विलासिता की सामग्रियों के उत्पादन पर अधिक ध्यान दिया गया है। साथ ही सरकार की गलत नीतियों, फालतू पैसे वाले शहरी खरीदारों की क्रयशक्ति ने, बेचने वालों की लाभ कमाने की वृत्ति ने दाम आसमान में बढ़ा दिये हैं और वे नीचे आने का नाम नहीं ले रहे हैं।

भाव नीचे लाने के लिये (१) सभी प्रकार के उत्पादनों विशेषकर उपभोक्ता अनिवार्य वस्तुओं में वृद्धि की जानी चाहिये। (२) जनता में फैले हुए फालतू पैसे के बटोरने का उपाय किया जाना चाहिये। साथ ही (३) करों और कर्जों से न पूरा पड़ने वाले व्यय की पूर्ति के लिये नोट छापने का ढर्रा अब बन्द कर देना चाहिये।

कीमतों के बढ़ने का प्रति तिमाही कारणसः विश्लेषण सरकार प्रकाशित करे। उसमें यह स्पष्ट करे कि मँहगाई के जिम्मेवार कौन से तत्व कितने मात्रा में हैं और उस पर नियन्त्रण कैसे लग सकता है? अर्थात् उत्पादन की कमी के लिये दैवी आपदा कितनी मात्रा में जिम्मेवार है? अथवा कौन सा तत्व जिम्मेवार है? जमाखोरी व मुनाफाखोरी कितनी मात्रा में जिम्मेवार है? सरकार की गलत नीतियाँ, नोटों का अत्यधिक छपना आदि कितने प्रतिशत जिम्मेवार हैं। सही मूल्य जीवन निर्देशांकों को निकालने की व्यवस्था होनी चाहिये। समु-

चित अधिकार सम्पन्न 'मूल्य नियन्त्रण परिषद' की तत्काल स्थापना करनी चाहिये। समस्त आवश्यक पदार्थों के मूल्य सन् १९६० के स्तर पर लाकर कीमतों का निर्धारण किया जाना चाहिये। निर्धनों व श्रमिकों के लिये उतने पैमाने पर उपभोक्ता भंडारों व सस्ते मूल्यों की दुकानों की व्यवस्था होनी चाहिये।

आय असमानता दूर करने की दृष्टि से कर ढांचे का अभिनवीकरण कर दिया जाना चाहिये। जमाखोरों मुनाफाखोरों तथा ब्लैक मार्केटियों के लिये कठोर सश्रम दण्ड की व्यवस्था होनी चाहिये। विलासितापूर्ण सामग्रियों के उत्पादन पर प्रतिबन्ध लगाया जाना चाहिये तथा आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन पर अधिक ध्यान देना चाहिये।

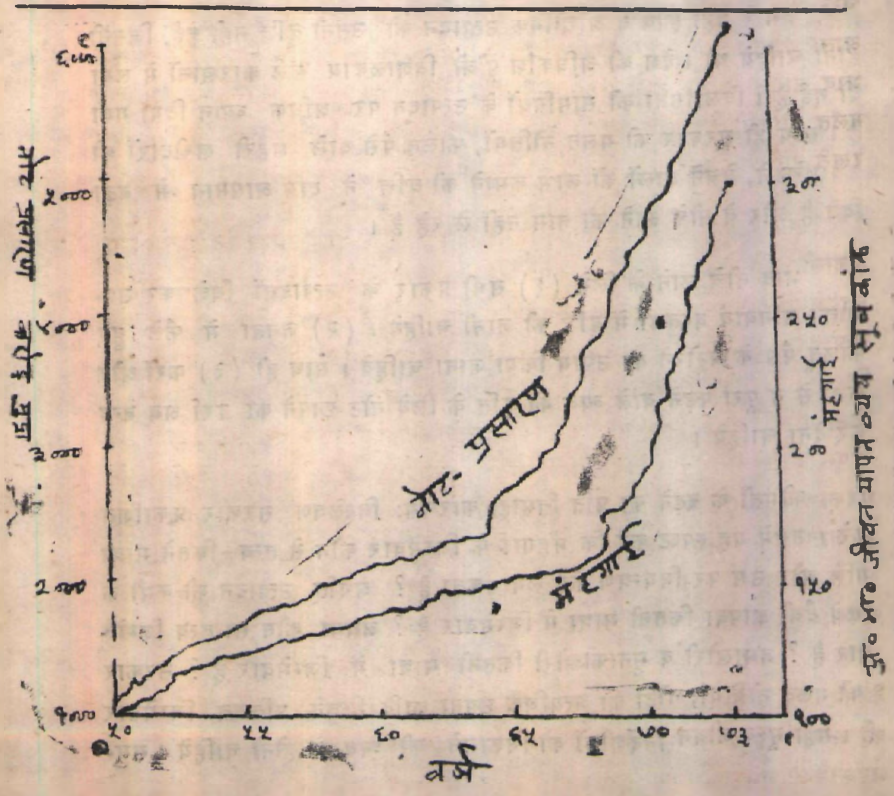

घाटे की अर्थव्यवस्था पर अंकुश लगानी चाहिये। अनाप-सनाप और फिजूलखर्ची बन्द होनी चाहिये, प्रशासनिक व्यय तथा अनुत्पादन खर्चों में भारी कटौती की जानी चाहिये।

उपर्युक्त बातों की पूर्ति के लिये आज आवश्यकता है जन-आगरण की और उसके लिये "उपभोक्ता प्रतिरोधात्मक आन्दोलन" को प्रभावशाली बनाने की।

उपभोक्ता आन्दोलन

वेतनभोगी कर्मचारी हो अथवा अन्य सामान्य नागरिक दोनों के लिये समान संकट के रूप में यह समस्या खड़ी हो गई है। अस्तु सभी उपभोक्ताओं को चाहे वे मजदूर हों या अन्य कोई भी समान मांग के लिये आज एक मंच पर आना आवश्यक है। वास्तव में उपभोक्ता भाव ही राष्ट्र भाव है। यह उपभोक्ता भाव जागृत रहेगा, तभी सरकार, मालिक और मजदूर अपने अपने स्वार्थों व गलत नीतियों को छोड़ सकेंगे और अपने सामने राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखते हुए अपनी नीतियां वे तय कर सकने के लिये बाध्य होंगे।

हमारे यहां का उपभोक्ता जिसमें मजदूर भी आता है, बड़ा निरीह, भोला, अज्ञानी और अनजान है। वह अपने दैनिक उपयोग की चीजों के लिये चाहे वे खाद्यपदार्थ हों, साबुन अथवा कपड़ा हो–बाजार के उतार चढ़ावों का, बड़े उत्पादकों, एकाधिकारियों का और अधिकाधिक लाभ कमाने की प्रवृत्ति का शिकार हो जाता है, इसीलिये बिना कोई कारण जाने या कारणों की खोज किये बिना बाजार में बढ़े हुए मूल्य चुकाकर, मंहगाई का रोना रोते हुए अपने घर वापस चला जाता है। वह कभी छोटे दुकानदारों को दोष देता है और कभी सरकार को, इतना ही नहीं कभी कभी तो वह अपने भाग्य को दोष देकर चुप हो जाता है। किन्तु समय आ गया है अधिक गरीब से गरीब और साधारण व्यक्ति को चूसने वालों और भ्रष्टाचार करने वालों के बारे में एवं थोड़ा बहुत अर्थशास्त्र की बातों की भी उसे जानकारी देनी आवश्यक है। वर्ग हितों की आज लूट मची है। सत्ता जिनके हाथ में है और पूंजी जिनके पास है–वे दुनियां के सब प्रकार के पाप करने पर तुल गये हैं। उनके नारे, वादे तथा शान शौक्ति को भारत की जनता २६ वर्षों से देख रही है और सुन रही है। केवल असंतोष भड़काने से समस्या नहीं सुलझ सकती वरन् उसे संगठित रूप देने की आवश्यकता

है। यदि सरकार की गलत नीतियों के कारण मूल्यवृद्धि है, तो उन नीतियों में सुधार करने के लिये बाध्य किया जा सकता है। उपभोक्ता समितियां जखोरेबाजों और कालाबाजारियों पर निगाह रख सकती हैं, सर्वाधिक सही जानकारी देकर भ्रष्टता को पकड़वाने में सरकार की मदद कर सकती हैं। पग-पग पर उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा कर सकती हैं। मूल्य बढ़ने पर सामूहिक रूप से वस्तुओं के बहिष्कार का भी ये संगठित उपभोक्ता समितियां निर्णय कर सकती हैं। उपभोक्ताओं के असन्तोष को संगठित रूप देकर मूल्यवृद्धि को रोकने के लिए प्रभावी कदम उठाकर शासन को बाध्य करने की आज परम आवश्यकता है।

रामनरेश सिंह

घाटे की अर्थव्यवस्था रिकार्ड स्तर पर

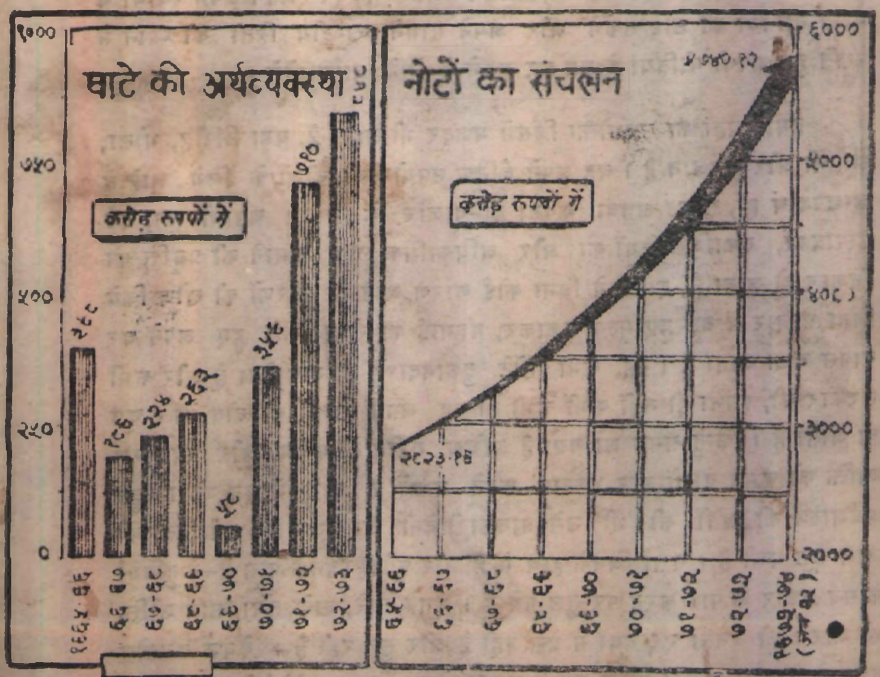

टिप-टाप प्रिन्ट्स, कानपुर।